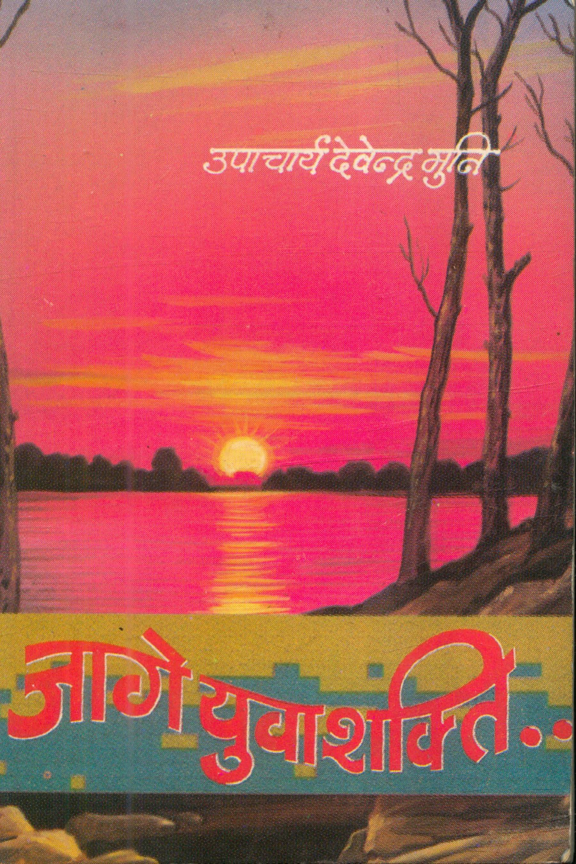
उपाचार्य देवेन्द्र मुनि
जागे युवाशक्ति..

श्री नमस्कार महामंत्र

नमो अरिहंताणं,
नमो सिध्दाणं,
नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं,
नमो लोए सव्व साहूणं

एसो पंचनमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम्॥

जागे युवा शक्ति

उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल,
उदयपुर—३१३ ००१.

❑ *अर्थ सौजन्य :*

L. Suganchand Jain
Advocate
104, Govindappa Naicken Street,
Madras-600001
Phone : 569729, 569469

❑ *मुद्रक :*

संजय सुराना के लिए,
कामधेनु प्रिंटर्स एन्ड पब्लिसर्स,
अवागढ़ हाउस, आगरा–२८२००२.

❑ *प्रथम बार :*

वि. सं. २०४७ चैत्र : महावीर जयन्ती
ईस्वी सन् १९९० अप्रैल

❑ *लागत मूल्य :*

दो रुपया पचास पैसा रु. २/५० मात्र

प्राथमिक

प्रत्येक प्राणी के जीवन की तीन अवस्थाएं होती हैं—बचपन, यौवन, तथा बुढ़ापा । यौवन—जिसे जवानी, दीवानी भी कहते हैं— सबसे महत्वपूर्ण है । यह मध्यबिन्दु है । बचपन—और बुढ़ापे का सन्तुलन ही क्या, सम्पूर्ण मानव जाति का सन्तुलन ही युवा शक्ति के हाथ में है । जिस समाज, देश एवं राष्ट्र की युवाशक्ति प्रबुद्ध होगी, जागृत होगी, कर्तव्यनिष्ठ और अनुशासित होगी, वह समाज, देश व राष्ट्र अवश्य ही प्रगति के शिखर को छू सकेगा और सम्पूर्ण विश्व पर अपना नैतिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभाव जमा सकेगा ।

इन वर्षों में अनेक बार युवा सम्मेलनों को सम्बोधित करने का प्रसंग आया है और तब-तब मैंने मुख्य रूप में एक ही बात पर बल दिया है—युवा वर्ग सर्वप्रथम अपना चारित्रिक निर्माण करें । चरित्र-बल ही सबसे पवित्र बल है । जिसका चरित्र ऊंचा, उसका जीवन ऊंचा ।

युवावर्ग में चारित्रिक एवं नैतिक गुणों का किस प्रकार विकास हो और उससे उनका जीवन किस प्रकार निखरेगा, इन्हीं कुछ बिन्दुओं पर प्रस्तुत लघु निबंध में चिन्तन प्रस्तुत किया है । यह निबंध भी लघु है, और पुस्तक का आकार भी लघु है । आजकल लघु संस्करणों की मांग है, अतः यह लघु संस्करण सबको आकार-प्रकार विषय वस्तु की दृष्टि से प्रिय लगेगा, ऐसा विश्वास है ।

पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी म. की कृपा—आशीर्वाद से मेरा यह प्रयत्न अवश्य ही सफल होगा । संपादक बंधु श्रीचन्द जी सुराना "सरस" का सहयोग सदा स्मरणीय रहेगा ।

उपाचार्य देवेन्द्रमुनि

जागे युवा शक्ति !

तीन अवस्थाएँ

प्रकृति का यह कैसा अटल नियम है, कि प्रत्येक चेतन पदार्थ की तीन अवस्थाएँ होती हैं—बचपन, यौवन और बुढ़ापा । चाहे आप जगत की महानतम शक्ति—सूर्य को देखिए, चाहे एक नन्हें से पुष्प को । सूर्य उदय होता है, उसकी किरणें कोमल और सुहावनी होती हैं, प्रातःकाल की कोमल धूप अच्छी लगती है । मध्यान्ह में सूर्य पूरे यौवन पर आता है तो धूप प्रचंड और असह्य हो जाती है । शरीर को सुहावनी लगने वाली किरणें जलाने लग जाती हैं । सायंकाल होते-होते सूर्य बुढ़ापे की गोद में चला जाता है, तब तेज, मन्द पड़ जाता है, किरणें शान्त हो जाती हैं ।

पुष्प, अंकुर और प्रत्येक जन्मधारी प्राणी इन्हीं तीन अवस्थाओं से गुजरता है । भगवान महावीर ने इन्हें तीन याम 'जाम' कहे हैं । 'तओ जामा पण्णत्ता, पढमे जामे मज्झिमे जामे– दिन के तीन प्रहर की भाँति प्रत्येक जीवन के तीन प्रहर–अर्थात् तीन अवस्थाएँ होती है ।

अर्जन का काल : बाल्यकाल

प्रथम याम–अर्थात्–उदयकाल है–बचपन का सुहावना समय है, उदयकाल में प्रत्येक जीवधारी शक्तियों का संचय करता है । प्राण शक्ति और ज्ञान शक्ति, दोनों का ही अर्जन–संचय अथवा संग्रह बाल्यकाल में होता है । बाल्यकाल कोमल अवस्था है । कोमल वस्तु को चाहे जैसा आकार दिया जा सकता है, चाहे, जिस आकृति में ढाला जा सकता है । बाल्यकाल में शरीर और मन, बुद्धि और शरीर की नाड़ियां, नसें सभी

कोमल होती हैं, अतः शरीर को बलवान, पहलवान बनाना हो तो भी बचपन से ही अभ्यास किया जाता है । अच्छे संस्कार, अच्छी आदतें, बोलने, बैठने की सभ्यता और संस्कार, काम करने का सलीका, बचपन में ही सिखाये जाते हैं । मानस शास्त्री कहते हैं—'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत' जो संस्कार, आदतें बचपन में लग जाती हैं, वे जीवन भर मिटती नहीं, इसलिए बचपन 'अर्जन' का समय है । बल संचय, विद्या अर्जन और संस्कार निर्माण—यह बचपन की ही मुख्य देन हैं ।

यौवन : सर्जन का समय

जीवन की दूसरी अवस्था है—जवानी । कहने को जवानी को दिवानी कहते हैं । शरीर, बुद्धि, संस्कार—सभी का पूर्ण विकास इस अवस्था में हो जाता है । छोटा-सा पौधा धीरे-धीरे जड़ें जमाकर

अपना विकास कर लेता है और फूल तथा फल देने में समर्थ हो जाता है । इस अवस्था में स्वाभाविक ही रक्त में उष्णता, स्फूर्ति और प्रवाहशीलता अधिक होती है, इसलिए मनुष्य का शरीर कष्ट सहने में अधिक सक्षम रहता है, काम करने में फुर्तीला और समर्थ रहता है । बचपन में जो बल—शक्ति घुटनों में थी, वह अब हृदय में संचारित हो जाती है, इसलिए युवक में साहस और शक्ति का प्रवाह बढ़ने लगता है । बाल्यकाल में यदि शिशु अच्छे संस्कार व अच्छी आदतें सीख लेता है, खान-पान आदि के संयम के साथ रहता है तो युवा अवस्था में उसमें अद्‍भुत शक्ति व स्फूर्ति प्रकट होती है, उसके शरीर में संचित वीर्य, ओज, तेज बनकर उसके तेजस्वी, प्रभावशाली और सुदर्शन व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं, इसलिए माता-पिता, जो अपनी सन्तान को तेजस्वी बनाना चाहते हैं, आकर्षक

व्यक्तित्व वाला बनाना चाहते हैं, उन्हें बचपन से ही उनके संस्कारों की तरफ ध्यान देना चाहिए ।

संसार में जितने भी तेजस्वी और प्रभावशाली व्यक्तित्व हुए हैं, उनके जीवन-निर्माण में जागरूक माता का हाथ उसी प्रकार रहा है, जैसे अच्छे फलदार वृक्षों के निर्माण में कुशल माली की देख-रेख रहती है ।

जिन बच्चों की बचपन में देखरेख नहीं रहती, जिन्हें अच्छे संस्कार नहीं मिलते, योग्य शिक्षण व संरक्षण नहीं मिलता, वे जवानी आने से पहले ही मुर्झा जाते हैं, दीपक प्रज्वलित होने से पहले ही बुझ जाते हैं । वृक्ष, फलदार बनने से पहले ही सूखने लग जाता है । अतः कहा जा सकता है, यौवन उन्हीं का चमत्कारी और प्रभावशाली होता है, जिनका बचपन संस्कारित रहता है ।

बचपन अर्जन का समय है तो यौवन सर्जन का समय है । तरुण अवस्था नव-सर्जन की वेला है । बचपन शिशिर ऋतु है, तो जवानी बसन्त ऋतु है । बसन्त में सभी वृक्ष, लता, पौधे खिल जाते हैं, विकसित होकर झूमने लगते हैं और नये-नये फूल व फलों से अपना सौन्दर्य प्रकट करते हैं, उसी प्रकार यौवन भी उत्साह व स्फूर्ति की लहरों से तरंगित होकर कुछ न कुछ करने को ललकता है, निर्माण करने को आतुर होता है । यदि जवानी में किसी को निर्माण करने का अवसर नहीं मिलता है, सर्जन करने की सुविधा व मार्गदर्शन नहीं मिलता है, तो उसकी शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, कुण्ठा व आन्तरिक तनाव से वह भीतर ही भीतर घुटन महसूस करता है ।

मानव-जीवन भी तीन अवस्थाओं में गुजरता है, बचपन अधूरा होता है, बुढ़ापा

अक्षम होता है, विकास की अन्तिम सीढ़ी पर खड़ा होता है । यौवन ही वह समय है, जो जीवन को समूचेपन से भरता है, समग्रता देता है, परिपूर्णता देता है । यौवन सोचने की सामर्थ्य भी देता है और करने की क्षमता भी, इसलिए 'यौवन' मनुष्य की अन्तर् बाह्य शक्तियों के पूर्ण विकास का समय है । इस अवस्था में मनुष्य अपने हिताहित का स्वयं निर्णय कर सकता है और स्वयं ही उसको कार्यरूप दे सकता है । बचपन और बुढ़ापा परापेक्ष हैं, परावलम्बी हैं । यौवन स्व-सापेक्ष है, स्वावलम्बी है । भगवान महावीर ने इसे जीवन का मध्य-काल बताया है, जागरणकाल बताया है और निर्माणकाल भी ।

"मज्झिमेण वयसा एगे संबुज्झमाणा समुट्ठिता ।"

यौवन वय में कुछ लोग जाग जाते हैं, स्वयं की पहचान कर लेते हैं, अपने

व्यक्तित्व की असीम क्षमताओं का अनुमान कर लेते हैं और पुरुषार्थ की अनन्त-अनन्त शक्ति को उस मार्ग पर लगा देते हैं, जिस पथ पर बढ़ना चाहते हैं, उस पथ को अपनी सफलताओं की वन्दनवार से सजा देते हैं ।

जो युवक होकर भी, यौवन में अपनी क्षमता का उपयोग नहीं कर सकता, या अपने को पहचान नहीं पाता, वह जीवन की बाजी हार जाता है । इसलिए यौवन का क्षण-क्षण, एक-एक पल कीमती है, इसको व्यर्थ मत जाने दीजिए । सिर्फ कल्पना या स्वप्न देखना छोड़कर निर्माण में जुट जाइए ।

उत्साह : यौवन की पहचान है

मैं एक युवक सम्मेलन में उपस्थित हुआ था, सैंकड़ों युवक बाहर से आये थे, स्थानीय कार्यकर्ताओं ने युवकों का परिचय कराया, तो एक युवक को सामने लाकर

बोले—महाराज साहब, यह हमारे गाँव का उत्साही युवक है ।

मैंने उसे गौर से देखा, और सोचा—"उत्साही युवक", इसका क्या मतलब ? उत्साह तो युवक की पहचान है, उत्साह युवक का पर्याय है, जिस पानी में तरलता व चंचलता नहीं, वह पानी ही नहीं, जिस घोड़े में स्फूर्ति नहीं, तेजी नहीं, वह मरियल टट्टू कोई "अश्व" होता है ? इसी प्रकार जिस युवक में उत्साह नहीं, वह कोई युवक है ?

हाँ, अगर कोई कहता, ये "उत्साही बुजुर्ग है" तो उत्साह उसकी शोभा होता, "उत्साही-युवक" यह युवक का विशेषण नहीं, या युवा की पहचान नहीं, किन्तु यौवन का अपमान है, उसकी शक्तियों की अवगणना है ।

यौवन में ही महान कार्य हुए हैं

संसार के महापुरुषों का इतिहास उठाकर देखिए, जितने भी वीर, योद्धा, प्रतिभाशाली, देश-भक्त, धर्मनेता, राष्ट्रनेता, वैज्ञानिक, आविष्कारक, महापुरुष और अपने क्षेत्र की हस्तियाँ हुई हैं, उन सबका अभ्युदय काल यौवन ही है । यौवन की रससिक्त ऋतु ने ही उनके जीवन वृक्ष पर सफलता के फल खिलाये हैं । भगवान् महावीर ३० वर्ष की भरी जवानी में साधना-पथ पर चरण बढ़ाते हैं, और यौवन के १२ वर्ष तपस्या, साधना, ध्यान आदि में बिताकर तीर्थंकर बनते हैं । गौतम बुद्ध भी २८ वर्ष की अवस्था में गृहत्याग कर यौवन को तपाते हैं और बुद्धत्व प्राप्त करते हैं । सिकन्दर, चन्द्रगुप्त, अशोक, गाँधी, नेहरू, मार्क्स, लेनिन, चर्चिल, रूजवेल्ट, सभी का इतिहास उठा कर देख लीजिए । २५ से ४५ वर्ष का जीवनकाल ही सबके अभ्युदय और

सफलता का महान समय रहा है । आयु का यही वह समय है, जब मनुष्य कोई महान कार्य कर सकता है, अथक परिश्रम व कष्ट सहने की क्षमता, आपत्तियों का मुकाबला करने की शक्ति, संघर्ष की अदम्य चेतना यौवन काल में ही दीप्त रहती है । यौवन में न केवल भुजाओं में बल रहता है, किन्तु सभी मानसिक शक्तियाँ भी पूर्ण जागृत और पूर्ण स्फूर्तियुक्त रहती हैं, उनमे ऊर्जा भी भरपूर रहती है और ऊष्मा भी । इसलिए सफलता का यह स्वर्ण काल कहा जा सकता है । नव-सर्जना का यह बसन्त और श्रावण मास माना जा सकता है । भगवान् महावीर ने इसे ही जीवन का मध्यकाल कहा है ।

विसर्जन का समय : बुढ़ापा

बचपन का अर्जनकाल, यौवन का सर्जनकाल पूर्ण होने के बाद, बुढ़ापे का विसर्जनकाल आता है । बचपन में जो शक्ति संचित की जाती है, वह यौवन में व्यय

होती है, और नव-सर्जन में काम आती है, किन्तु अर्जन और सर्जन परिपूर्ण होने के बाद "विसर्जन" भी होना चाहिए । जगत से, प्रकृति से, समाज से और परिवार से जो कुछ प्राप्त किया है, उसे, उसके लिए देना भी चाहिए । जो ज्ञान, अनुभव; नया चिन्तन और विविध प्रकार की जानकारियाँ आपको दीर्घकालीन श्रम के द्वारा, साधना के द्वारा प्राप्त हुई हैं, उनको समाज के लिए, मानवता के कल्याण हेतु विसर्जन करना भी आपका कर्तव्य है । जो धन-समृद्धि, वैभव आपको, अपनी सूझ-बूझ, परिश्रमशीलता और भाग्य द्वारा उपलब्ध हुआ है, उन उपलब्धियों को चाहे, वे भौतिक हैं, या आध्यात्मिक हैं, मानवता के हितकल्याण हेतु उनका अर्पण-विसर्जन करना भी अनिवार्य है । सरोवर में या कुँए में जल भरता ही रहे, कोई उस जल का उपयोग न करे, तो वह जल गन्दा हो जाता है, खारा

हो जाता है, किन्तु जल प्रवाह बहता रहे, तो जल स्वच्छ और मधुर बना रहता है । इसलिए प्रौढ़ अवस्था के बाद मनुष्य को समाज-सेवा, राष्ट्र-सेवा तथा दान एव परोपकार की तरफ विशेष रूप से बढ़ना चाहिए । यह सेवा, परोपकार एवं दान ही "विसर्जन" का रूप है, जो मुख्य रूप में वृद्ध अवस्था, या परिपक्व अवस्था में किया जाता है, किन्तु यहाँ अधिक इस विषय में अभी नहीं कहना है, यहां हमें युवाशक्ति के विषय पर ही चिन्तन करना है।

मैंने कहा था कि समाज में, संसार में चाहे जिस देश का या राष्ट्र का इतिहास पढ़ लीजिए, आपको एक बात स्पष्ट मिलेगी कि धार्मिक या सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक, जिस किसी क्षेत्र में जो क्रान्तियाँ हुई हैं, परिवर्तन हुए हैं, और नवनिर्माण कार्य हुए हैं, उनमें पचहत्तर प्रतिशत युवाशक्ति का योगदान है । इसलिए

युवाशक्ति यानी क्रान्ति की जलती मशाल ! युवा शक्ति यानी नवसृजन का स्वर्णिम प्रभात !

रचनात्मक दृष्टिकोण रखिए :

मैंने बताया कि यौवन सर्जन का काल है, यह बसन्त का समय है, जिसमें जीवन के प्रत्येक पहलू पर उमंग और उल्लास महकता है, कुछ करने की ललक उमंगती है । इसलिए यौवन एक रचनात्मक काल है । आज के युवावर्ग में रचनात्मक दृष्टि का अभाव है । वे दूसरों की आलोचना तो करते हैं, नारेबाजी और शोर-शराबा करके विद्रोह का बिगुल भी बजा देते हैं । वे किसी भी निहित स्वार्थ वालों के इशारों पर अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने लग जाते हैं । आजकल के राजनीति छाप समाज नेता, युवाशक्ति को अलसेशियन कुत्ते की तरह इस्तेमाल कर रहे

हैं, जिन्हे किसी भी विरोधी व विपक्ष पर 'छू' करके छोड़ देते हैं । वे युवकों को नाना प्रलोभन देकर, सरसब्ज बाग दिखाकर दिग्भ्रांत किये रखते हैं । इस मृगतृष्णा में पड़ा युवक न तो अपना स्वतन्त्र चिन्तन कर कुछ निर्माण कर सकता है और न ही उनके चंगुल से छूटने का साहस ही दिखा सकता है । दूसरों के इशारों पर कलाबाजी दिखाना और विद्रोह-विध्वंस में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते रहना-यह युवा-शक्ति के लिए शर्म की बात है । अब विद्रोह और विध्वंस का नहीं किन्तु निर्माण का रास्ता अपनाना है । यद्यपि विध्वंस करना सरल है, निर्माण करना कठिन है । किसी भी सौ-दो सौ वर्ष पुरानी इमारत को एक धमाके के साथ गिराया जा सकता है, किन्तु फिर से निर्माण करने में बहुत समय और शक्ति लगती है ।

मैं युवकों को कहना चाहता हूँ; प्रत्येक वस्तु को रचनात्मक दृष्टि से देखो, विरोध-विद्रोह, विध्वंस की दृष्टि त्यागो, जो परिस्थितियाँ हमारे सामने हैं, जो व्यक्ति और जो साधन हमें उपलब्ध हैं, उनको कोसते रहने से या गालियाँ देते रहने से कुछ नहीं होगा, बल्कि सोचना यह है कि उनका उपयोग कैसे, किस प्रकार से कितना किया जा सकता है ताकि इन्हीं साधनों से हम कुछ बन सकें, कुछ बना सकें ।

राम ने जब लंका के विशाल साम्राज्य के साथ युद्ध की दुन्दुभि बजाई तो क्या साधन थे उनके पास ? कहाँ अपार शक्तिशाली राक्षस राज्य और कहाँ वानरवंशी राजाओं की छोटी-सी सेना । सीमित साधन ! अथाह समुद्र को पार कर सेना को उस पार पहुँचाना कितना असंभव जैसा कार्य था, किन्तु उन सीमित साधनों से छोटी-सी सेना को भी राम ने इस प्रकार

संगठित और उत्साहित किया जो रावण के अभेद्य दुर्ग से टक्कर ले सकी । राम ने अभावों की कमी पर ध्यान नहीं दिया, समुद्र पर पुल बनाने के लिए और कुछ साधन नहीं मिले तो पत्थरों का ही उपयोग कर अथाह समुद्र की छाती पर सेना खड़ी कर दी ।

तो इस प्रकार अल्प साधन, नगण्य सहयोग की तर्फ नहीं देखकर जो उपलब्ध है उसे ही सकारात्मक रूप देना है, रचनात्मक दृष्टि से लेना है और छोटे छोटे तिनकों से हाथियों को बांध देना है । युवा वर्ग इस प्रकार जीवन में रचनात्मक दृष्टि से सोचने की आदत डाले ।

शक्ति का उपयोग सर्जन में हो

युवाशक्ति—एक ऊर्जा है, एक विद्युत है । विद्युत का उपयोग संसार में निर्माण के लिए भी होता है, और विध्वंस के लिए भी । अणु-शक्ति का उपयोग यदि शान्तिपूर्ण निर्माण कार्यों के लिए होता है, तो संसार में

खुशहाली छा जाती है और यदि अणुबम या अणुयुद्ध में उसका उपयोग किया गया तो सर्वत्र विनाश और सर्वनाश की विभीषिका छायेगी । युवाशक्ति भी एक प्रकार की अणुशक्ति है, इस शक्ति को यदि समाज-सेवा, देश-निर्माण, राष्ट्रीय-विकास और मानवता के अभ्युत्थान के कार्यों में लगा दिया जायेगा तो बहुत ही चमत्कारी परिवर्तन आ जायेंगे । संसार की दरिद्रता, बेकारी, पीड़ाएँ, भय, युद्ध, आतंक आदि समाप्त होकर प्रेम, भाईचारा, खुशहाली, सुशिक्षा, आरोग्य, और सभी को विकास के समान अवसर मिल सकेंगे । आप देख सकते हैं, जापान जैसा छोटा-सा राष्ट्र जो परमाणु युद्ध की ज्वाला में बुरी तरह दग्ध हो चुका था, हिरोशिमा और नागासाकी की परमाणु विभीषिकाएँ उसकी समूची समृद्धि को मटियामेट कर चुकी थीं, वही राष्ट्र पुनः जागा, एकताबद्ध हुआ, युवाशक्ति संगठित

हुई और राष्ट्रीय भावना के साथ नवनिर्माण में जुटी तो आज कुछ ही समय में संसार का महान धनाढ्च और सबसे ज्यादा प्रगतिशील राष्ट्र बन गया है ।

कर्तव्य बोध कीजिए

आज भारत की युवापीढ़ी बिखरी हुई है, दिशाहीन है, और निर्माण के स्थान पर विध्वंस और विघटन में लगी हुई है, इसलिए प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से संसार का सर्वाधिक सम्पन्न और सब ऋतुओं के अनुकूल वातावरण वाला महान देश भारत गरीब राष्ट्रों की गिनती में आता है । और छोटे-छोटे देशों से भी कर्ज लेकर अपंने विकास और निर्माण कार्य कर रहा है । भारत के हजारों, लाखों युवा वैज्ञानिक और लाखों कुशल डाक्टर विदेशों में जाकर बस गये, अपनी मातृभूमि की सेवा न करके, अन्य राष्ट्रों की सेवा में लगे हैं, इसका क्या कारण है ? मेरी समझ में सबसे मुख्य कारण

है—युवाशक्ति में दिशाहीनता और निराशा छाई हुई है, कर्तव्य भावना का अभाव और देश व मानवता के प्रति उदासीनता ही इस विनाश और विपत्ति का कारण है ।

इसलिए आज युवाशक्ति को कर्तव्य-बोध करना है । जीवन का उद्देश्य, लक्ष्य और दिशा स्पष्ट करनी है ।

संस्कृत में एक सूक्ति है—

यौवनं धन-संपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ?

यौवन, धन-सम्पत्ति, सत्ता, अधिकार और अविवेक (विचारहीनता) ये प्रत्येक ही एक-एक दानव हैं, यदि ये चारों एक ही स्थान पर एकत्र हो जायें, अर्थात् चारों मिल जाएँ, तो फिर क्या अनर्थ होगा ? कैसा महाविनाश होगा? कुछ नहीं कहा जा सकता ।

युवक, स्वयं एक शक्ति हैं, फिर वे संगठित हो जायें, एकता के सूत्र में बंध जायें, अनुशासन में चलने का संकल्प ले लें,

विवेक और विचारशीलता से काम लें, तो वे संसार में ऐसा चमत्कारी परिवर्तन कर सकते हैं कि नरक को स्वर्ग बनाकर दिखा सकते हैं, जंगल में मंगल मना सकते हैं । इसलिए चाहिए, कुछ दिशाबोध, अनुशासन, चारित्रिक नियम, अतः मैं इसी विषय पर युवकों को कुछ संकेत देना चाहता हूँ ।

अनुशासन में रहना सीखो

युवा वर्ग को आज सबसे पहली जरूरत है—अनुशासित रहने की, संगठित रहने की । छोटे-छोटे स्वार्थों के कारण, प्रतिस्पर्धा के कारण, जहाँ युवक परस्पर टकराते हैं, एक-दूसरे की बुराई और एक-दूसरे को नीचा दिखाने का काम करते हैं, वहाँ कभी भी निर्माण नहीं हो सकता, नवसृजन नहीं हो सकता ।

अनुशासन, प्रगति का पहला पाठ है। जो स्वयं अनुशासन में रहना जानता है, वह दूसरों को भी अनुशासित रख सकता है । जहाँ सब मिलकर एकजुट होकर काम करते

हैं, वहाँ प्रगति, समृद्धि और सत्ता स्वय उपस्थित होती है । तथागत बुद्ध ने कहा था—'जब तक वैशाली गणराज्य के क्षत्रिय परस्पर मिलकर विचार करेंगे, वृद्धजनों का परामर्श मानेंगे, एक-दूसरे का सन्मान करेंगे और संगठित—एकमत होकर कोई कार्य करेंगे, तब तक कोई भी महाशक्ति इनका विनाश नहीं कर सकती ।'

भारत जैसे महान राष्ट्र के लिए भी आज यही बात कही जा सकती है, यहाँ का युवावर्ग यदि अपने वृद्धजनों का सन्मान करता रहेगा, उनके अनुभव से लाभ लेता रहेगा, उनका आदर करेगा और स्वार्थ की भावना से दूर रहकर धर्म व राष्ट्रप्रेम की भावना से संगठित रहेगा, एक-दूसरे को सन्मान देगा तो वह निश्चित ही एक दिन संसार की महाशक्ति बन जाएगा । कोई भी राष्ट्र इसे पराजित तो क्या टेढ़ी आंख से भी देखने की हिम्मत नहीं करेगा अतः सर्वप्रथम युवावर्ग को 'अनुशासन' में रहने की आदत

डालनी चाहिए । अनुशासित सिपाही की भांति, संगठित फौज की भाँति उसे अपनी जीवनशैली बनानी चाहिए ।

जो व्यक्ति अनुशासित जीवन जीना सीख लेता है, वह चाहे राजनैतिक क्षेत्र में रहे, धार्मिक क्षेत्र में रहे, प्रशासनिक क्षेत्र में रहे, या व्यापारिक, औद्योगिक क्षेत्र में, वह हर जगह अपना अलग ही स्थान बनायेगा, उसका व्यक्तित्व अलग चमकेगा, सबको प्रभावित भी करेगा; और सभी क्षेत्रों में प्रगति, उन्नति एवं सफलता भी प्राप्त करेगा ।

अनुशासन भी कई प्रकार के हैं— सबसे पहला और सबसे आवश्यक अनुशासन है- 'आत्मानुशासन ।' जिसने अपने आप पर अनुशासन करना सीख लिया वह संसार में सब पर अनुशासन कर सकता है और सब जगह सफल हो सकता है ।

आत्मानुशासन का मतलब है—अपनी अनावश्यक इच्छाओं पर, आकांक्षाओं पर,

गलत आदतों पर, और उन सब भावनाओं पर बुद्धि का नियन्त्रण रखना, जिनसे व्यर्थ की चिंता, भाग-दौड़, परेशानी, हानि और बदनामी हो सकती है । मनुष्य जानता है कि मेरी यह इच्छा कभी पूरी होने वाली नहीं, या मेरी इस आदत से मुझे बहुत नुकसान हो सकता है । बोलने की, खाने की, पीने की, रहन-सहन की, ऐसी अनेक बुरी आदतें होती हैं, जिनसे सभी तरह की हानि उठानी पड़ती है, आर्थिक भी, शारीरिक भी । कभी-कभी इच्छा व आदत पर नियन्त्रण न कर पाने से मनुष्य अच्छी नौकरी से हाथ धो बैठता है, अपना स्वास्थ्य चौपट कर लेता है और धन बर्बाद कर, दर-दर का भिखारी बन जाता है, अतः जीवन मे सफल होने के लिए 'आत्मानुशासन' सबसे महत्त्वपूर्ण गुर है ।

आत्मानुशासन साध लेने पर, सामाजिक अनुशासन, नैतिक अनुशासन और भावनात्मक अनुशासन, स्वतः सध जाते

हैं, अतः युवा वर्ग को सर्वप्रथम भगवान् महावीर का संदेश पद-पद पर स्मरण रखना चाहिए—'अप्पा दन्तो सुही होई' अपने आप पर संयम करने वाला सदा सुखी रहता है। अपनी भावना पर, अपनी आदतों पर और अपनी हर गतिविधि पर स्वयं का नियन्त्रण रखें।

पाँच आवश्यक गुण

यह माना कि 'युवा' आज संसार की महान शक्ति है। 'युवावस्था' जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घड़ी है, किन्तु इस शक्ति को, इस समय की सन्धि को हम तभी उपयोगी बना सकते हैं, जब वह अपनी सकारात्मक शक्तियों को जगायेगी। अपनी सकारात्मक शक्तियों को जगाने के लिए युवा वर्ग को इन पाँच बातों पर ध्यान केन्द्रित करना है—

१. **श्रद्धाशील बनें**—आज का युवा-मानस श्रद्धा, आस्था, विश्वास, फेथ (Faith) नाम से नफरत करता है, वह कहता है—

श्रद्धा करना बूढ़ों का काम है, युवक की पहचान है—बात-बात में तर्क, अविश्वास और गहरी जाँच-पड़ताल । मैं समझता हूँ—युवा वर्ग में यही सबसे बड़ी भ्रान्ति या गलतफहमी हो रही है । श्रद्धा या विश्वास एक ऐसा टॉनिक है, रसायन है जिसके बिना काम करने की शक्ति आ ही नहीं सकती । जब तक आप अपने स्वयं के प्रति श्रद्धाशील नहीं होंगे, अपनी क्षमता पर भरोसा नहीं करेंगे, तब तक कुछ भी काम करने की हिम्मत नहीं होगी । श्रद्धाहीन के पाँव डगमगाते रहते हैं, उसकी गति में पकड़ नहीं होती, स्थिरता नहीं होती और न ही प्रेरणा होती है । हम एक व्यक्ति पर, एक नेता पर, एक धर्म सिद्धान्त पर, एक नैतिक सद्‌गुण पर या भगवान् नाम की किसी परम शक्ति पर जब तक भरोसा नहीं करेंगे, श्रद्धा नहीं करेंगे तब तक न तो हमारे सामने बढ़ने का कोई लक्ष्य होगा, न ही मन में बल होगा, न उत्साह होगा और न ही समर्पण

भावना होगी । प्रेम जैसे समर्पण चाहता है, राष्ट्र वैसे ही बलिदान चाहता है और भगवान् श्रद्धा चाहता है । नाम भिन्न-भिन्न हैं, बात एक ही है । अन्तर् का विश्वास जागृत हो जाये तो श्रद्धा भी जगेगी, समर्पण भावना भी बढ़ेगी और बलिदान हो जाने की दृढ़ता भी आयेगी ।

इसलिए मैं युवा वर्ग से कहना चाहता हूँ—आप 'श्रद्धा' नाम से घबराइए नहीं । हाँ, श्रद्धा के नाम पर अंधश्रद्धा के कुएँ में न गिर पड़ें, आँख खुली रखें, मन को जागृत रखें, बुद्धि को प्रकाशित, और फिर श्रद्धा का दीपक जलायें । श्रद्धाशीलता ही मनुष्य को कर्तव्य के प्रति उत्साहित करती है, कर्तव्य से बाँध रखती है । श्रद्धा कर्ण का वह कवच है जिसे भेदने की शक्ति न अर्जुन के बाणों में थी और न ही भीम की गदा में ।

श्रद्धा अज्ञानमूलक नहीं, ज्ञानमूलक होनी चाहिए । इसलिए पहले पढ़िये, स्वाध्याय कीजिए, ज्ञान प्राप्त कीजिए ।

सत्य-असत्य की पहचान का थर्मामीटर अपने पास रखिए और फिर सत्य पर श्रद्धा कीजिए, लक्ष्य पर डट जाइए । यदि आपमें श्रद्धा की दृढ़ता नहीं होगी तो आपका जीवन बिना नींव का महल होगा, आपकी योजनाएँ और कल्पनाएँ, आपके सपने और भावनाएँ शून्य में तैरते गुब्बारों के समान इधर-उधर भटकते रहेंगे । इसलिए युवा वर्ग को मैं कहना चाहता हूँ, सर्वप्रथम श्रद्धा का कवच धारण करें । विश्वास करना सीखें तो सर्वत्र विश्वास प्राप्त होगा । अफवाहों में न उड़ें, भ्रान्तियों के अंधड़ में न बहें, स्वयं में स्थिरता, दृढ़ता और आधारशीलता लायें।

२. आत्मविश्वासी और निर्भय बनें— श्रद्धाशीलता का ही एक दूसरा पक्ष है— आत्मविश्वास । 'विश्वास' जीवन का आधार है । जीवन के हर क्षेत्र में विश्वास से ही काम चलता है । सबसे पहली बात है, दूसरों पर विश्वास करने से पहले, अपने आप पर विश्वास करें । जो अपने पर

विश्वास नहीं कर सकता, वह संसार में किसी पर भी विश्वास नहीं कर सकता। विश्वास करने की उसकी सभी बातें झूठी हैं, क्योंकि आपके लिए सबसे जाना-पहचाना और सबसे नजदीक आप स्वयं हैं, इससे नजदीक का मित्र और कौन है? जब आप अपने सबसे अभिन्न अंग आत्मा पर, अपनी शक्ति, अपनी बुद्धि और अपनी कार्यक्षमता पर भी विश्वास नहीं कर सकेंगे तो दुनिया में किस पर विश्वास करेंगे? माता, भाई, पत्नी, पुत्र, मित्र ये सब दूर के एवं भिन्न रिश्ते हैं। आत्मा का रिश्ता अभिन्न है, अतः सबसे पहले अपनी आत्मा पर विश्वास करना चाहिए।

आपकी आत्मा में अनेक शक्तियाँ हैं। धर्मशास्त्र की भाषा में आत्मा अनन्तशक्तिसम्पन्न है। और आज के विज्ञान की भाषा में मानव शरीर, असीम अगणित शक्तियों का पुंज है। कहते हैं, पश्चिम के मानस शास्त्रियों ने प्रयोग करके बताया है

कि मनुष्य अपनी मस्तिष्क शक्तियों को केन्द्रित करके उनसे इतनी ऊर्जा पैदा कर सकता है, कि एक लम्बी ट्रेन १00 किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ्तार से चल सकती है । हजारों, लाखों टन वजन की ट्रेन चलाना, क्रेन उठाना, यह जब आपकी मस्तिष्कीय ऊर्जा से सम्भव हो सकता है, तो कल्पना कीजिए, आपकी मानसिक ऊर्जा में कितनी प्रचण्ड शक्ति (पावर) होगी ।

प्राचीन समय में मन को एकाग्र करके मन्त्रजाप करने से देवताओं के आकर्षण करने की घटनाएँ होती थीं, क्या वे कल्पना मात्र हैं ? नहीं । मानव-मन की प्रचण्ड शक्ति से करोड़ों मील दूर बैठे देवताओं का आसन हिल सकता है, तो क्या अपने आस-पास के जगत् को, अपने सामने खड़े व्यक्ति को प्रभावित नहीं कर सकता ? इसमें किसी प्रकार के मैस्मेरिज्म या सम्मोहन की जरूरत नहीं है, किन्तु सिर्फ

मनःसंयम, एकाग्रता और दृढ़ इच्छा शक्ति की जरूरत है ।

आज के युवा वर्ग में देखा जाता है, प्रायः इच्छा शक्ति का अभाव है, न उसमें मानसिक संयम है, न एकाग्रता और न इच्छा शक्ति और यही कारण है कि आज का युवक दीन-हीन बनकर भटक रहा है । जीवन में निराशा और कुण्ठा का शिकार हो रहा है । असफलता की चोट खाकर अनेक युवक आत्महत्या कर लेते हैं, तो अनेक युवक असमय में ही बुड्ढे हो जाते हैं, या मौत के मुँह में चले जाते हैं ।

मैं अपने युवा बन्धुओं से कहना चाहता हूँ, वे जागें, उठें—उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! प्राप्य वरान्, निबोधत ! स्वयं उठें, अपनी शक्तियों को जगायें और दूसरे साथियों को भी उत्साहित करें, जीवन लक्ष्य को प्राप्त करें, मन की शक्तियों को केन्द्रित करें, आत्मा को बलवान बनायें— नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' यह आत्मा या समझिए,

संसार का भौतिक व आध्यात्मिक वैभव बलहीन, दुर्बल व्यक्तियों को प्राप्त नहीं हो सकता, 'वीरभोग्या वसुन्धरा'—यह रत्नगर्भा पृथ्वी वीरों के लिए ही है ।

आत्म-विश्वास जगाने के लिए किसी दवा या टॉनिक की जरूरत नहीं है, किन्तु आपको ध्यान, योग, जप, स्वाध्याय, जैसी विधियों का सहारा लेना पड़ेगा । ध्यान-योग-जप, यही आपका टॉनिक है, यही वह पावर-हाउस है, जहाँ का कनेक्शन जुड़ते ही शक्ति का अक्षय स्रोत उमड़ पड़ेगा ।

अतः बन्धुओ ! जीवन में सफलता और महान आदर्शों के शिखर पर चढ़ने के लिए स्वयं को अनुशासित कीजिए, आत्म-विश्वास जगाइये । जो आत्म विश्वासी होगा, वह किसी न किसी रूप में परमात्म-विश्वासी भी होगा । चूँकि आखिर मनुष्य (या आत्मा) का सर्वथा निर्दोष परिपूर्ण स्वरूप ही तो ईश्वर है । अतः आत्मा में विश्वास करने वाला ईश्वरनिष्ठ होगा, चाहे

उसे ईश्वर भक्त कहो, या शुद्ध चैतन्य ईश्वर में विश्वास रखने वाला परम आस्तिक । जो आस्तिक होगा, वह सदा निर्भय होगा, निष्ठावान होगा ।

३. **चरित्रबल बढ़ाइये**—चरित्र मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है । एक अंग्रेजी लेखक ने कहा है—

"धन गया तो कुछ भी नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो बहुत कुछ चला गया और चरित्र चला गया तो सब कुछ नष्ट हो गया ।" चरित्र या मॉरल एक ही बात है, यही हमारी आध्यात्मिक और नैतिक शक्ति है, मानसिक बल है, हमें किसी भी स्थिति मे किसी के समक्ष बोलने, करने या डट जाने की शक्ति अपने चरित्रबल से मिलती है । चरित्र या नैतिकता मनुष्य को कभी भी पराजित नहीं होने देती, अपमानित नहीं होने देती । सच्चरित्र व्यक्ति, अपनी नैतिकता का पालन करने वाला कभी भी किसी भी समय निर्भय रहता है और वह

हमेशा सीना तानकर खड़ा हो सकता है। चरित्रवान् की नाक सदा ऊँची रहती है।

युवा वर्ग को अपनी शक्तियों का उपयोग करने के लिए यह जरूरी है कि वह सर्वप्रथम अपने आचरण पर ध्यान देवें, चरित्रवान बनें।

आज की परिस्थितियों में चरित्रवान या सदाचारी बने रहना कुछ कठिन अवश्य है, परन्तु असम्भव नहीं है और महत्व तो उसी का है जो कठिन काम भी कर सकता हो।

आज खान-पान में, व्यवहार में, लेन-देन में, मनुष्य की आदतें बिगड़ रही हैं। व्यसन एक फैशन बन गया है। बीड़ी-सिगरेट, शराब-जुआ-सिनेमा, गन्दा खाना और फिजूलखर्ची—यह सब युवा शक्ति के वे घुन हैं जो उसे भीतर-भीतर खोखला कर रहे हैं। इन बुरी आदतों से शरीर शक्तियाँ क्षीण होती जाती हैं, यौवन की चमक बुढ़ापे की झुर्रियों में बदल जाती

हैं, साथ ही मानसिक दृष्टि से भी व्यक्ति अत्यन्त कमजोर, हीन और अविश्वासी बन जाता है । आज का युवा वर्ग इन बुराइयों से घिर रहा है और इसलिए वह निस्तेज और निरुत्साह हो गया है । वह इधर-उधर भटक रहा है । परिवार वाले भी परेशान हैं, माता-पिता भी चिन्तित हैं और इन बुरी आदतों से ग्रस्त व्यक्ति स्वयं को भी सुखी महसूस नहीं कर पाता है, किन्तु वह बुरी आदतों से मजबूर है । स्वयं को इनके चंगुल से मुक्त कराने में असमर्थ पा रहा है । यह उसकी सबसे बड़ी चारित्रिक दुर्बलता है ।

पहले व्यक्ति बुराइयों को पकड़ता है और फिर बुराइयाँ उसे इस प्रकार जकड़ लेती हैं कि वह आसानी से मुक्त नहीं हो पाता । वे बुराइयाँ, मनुष्य के मानसिक बल को खत्म कर देती हैं । नैतिक भावनाओं को समाप्त कर डालती हैं और शरीर शक्ति को भी क्षीण कर देती हैं । इस प्रकार उसका नैतिक एवं शारीरिक पतन होता जाता हैं ।

युवाशक्ति को शक्तिशाली बनना है और अपने आत्मबल एवं चरित्रबल से समाज तथा राष्ट्र का उत्थान करना है तो सबसे पहले स्वयं के चरित्र व नैतिक बल को सुदृढ़ व सुरक्षित रखना होगा ।

नैतिक एवं चारित्रिक गुण

नीति तथा चरित्र शब्द इतना व्यापक है कि एक प्रकार से समूचा मानवीय व्यवहार और जीवन के आवश्यक सभी सद्‌गुण इसमें आ जाते हैं, इसलिए नैतिक तथा चारित्रिक सद्‌गुणों की कोई सूची नहीं बनाई जा सकती और न हीं इसकी कोई सीमा है, फिर भी कुछ गुण ऐसे हैं जिनका प्रभाव समग्र जीवन पर पड़ता है, समूचा जीवन व्यवहार जिन गुणों से प्रभावित और संप्रेरित रहता है, उनकी एक सामान्य चर्चा कर लेना आवश्यक होगा ।

सत्यनिष्ठा

जिसे हम सच्चाई कहते हैं, वह जीवन की सबसे पहली अच्छाई है ।

सत्यनिष्ठा मनुष्य को सदा निर्भय और वीर बनाती है, अपने प्रति ईमानदार भी । जब मानव झूँठ बोलता है या झूठा आचरण करता है तो उसके भीतर ही भीतर एक भय और हीनभावना का ऐसा जर्बदस्त जहरीला डंक लगता है कि उसकी आत्म-चेतना मूर्च्छित सी हो जाती है । अज्ञात भय से व्याप्त शिथिलता से समूचा शरीर निढाल, निःशक्त और आत्मा मरी-मरी सी हो जाती है । जिस प्रकार हृदयाघात का धक्का लगने से समूचा शरीर ढीला, सत्वहीन, शक्तिहीन और उत्साहहीन सा हो जाता है, उसी प्रकार असत्य का आघात लगने से मन और आत्मा की शक्ति क्षीण होने लगती है । साहस और उत्साह की भावना मिट जाती है, असत्यवादी की आत्मा भीतर ही भीतर खुद को धिक्कारती है और आत्म-ग्लानि के कोल्हू में निचुड़कर रसहीन, सारहीन सी हो जाती है । झूठा व्यक्ति चाहे जितनी ऊंची आवाज में बोले,

उसकी आत्मा की आवाज हमेशा दबी रहती है, अपने साथियों और मित्रों के समक्ष वह सीना तानकर खड़ा नहीं हो सकता, जबकि सत्य का आचरण करने वाला चाहे जितना दुर्बल हो, उसकी आत्मा शक्तिशाली होती है, उसका साहस बुलन्द रहता है और स्वयं उसे गौरव और बड़प्पन महसूस होता है ।

गांधी जी जैसे अनेक राष्ट्रीय नेता और सत्पुरुषों का जीवन हमारे सामने है । वे शारीरिक दृष्टि से चाहे जितने कमजोर रहे होंगे, धन और पद का बल भी उनके पास नहीं रहा होगा, किन्तु सत्य का बल उनके पास था, इसलिए वे कभी दबे नहीं, डूबे नहीं, डरे नहीं, बड़ी से बड़ी कठिनाई का सामना करने में सक्षम हुए और दूसरों को अपने सामने झुकाने में सफल रहे । क्या गांधी जी के समय गांधी जी से बड़ा विद्वान या गांधी जी से बड़ा वक्ता भारत में दूसरा नहीं था ? कई थे, परन्तु गांधी जी के समान सत्य का निष्ठावान साधक कोई

विरला ही रहा होगा । उनकी सत्यनिष्ठा ने ही उनको सर्वत्र विजय, सफलता और सम्मान दिलाया । वे शक्तिशाली ब्रिटिश हुकूमत के सामने झुके नहीं, वायसराय के सामने भी अपनी बात उतनी ही निर्भीकता, स्पष्टता और सच्चाई के साथ रखते थे, जितनी आम आदमी के सामने । उनकी सत्यनिष्ठा ने ही उनको महात्मा, बापू और राष्ट्रपिता का सर्वोच्च आदर और सन्मान दिलाया ।

जैन कथा साहित्य में मणिशेखर नामक युवक की कथा आती है । बचपन में बुरी संगति के कारण वह चोरी, जूआ आदि बुरी आदतों का शिकार हो गया । माता-पिता दुःखी थे, लज्जित थे कि इतने बड़े सेठ का लड़का चोरी करता है, जुआरी कहलाता है, मगर हजार-हजार बार समझाने पर भी उसकी आदतें नहीं छूटी । एक बार किसी तेजस्वी संत ने उसे समझाया तो उसने कहा—चोरी की आदत मैं छोड़ नहीं सकता

और जो कुछ कहो सो छोड़ सकता हूँ । संत ने कहा—ठीक है, तुम सिर्फ झूठ बोलना छोड़ दो, और जो कुछ मन में आये सो करो ।

मणिशेखर ने संत के सामने प्रतिज्ञा कर ली—आज से, अभी से ही कभी झूठ नहीं बोलूंगा ।

उसी रात को मणिशेखर चोरी करने निकलता है, रात के अंधेरे में, नगर का राजा भेष बदलकर घूमता है, दोनों की मुलाकात होती है । राजा पूछता है—कौन हो तुम ?

मणिशेखर सकपकाया, मगर झूठ नहीं बोला, उसने कहा—मैं गुणशेखर सेठ का पुत्र हूँ मणिशेखर !

कहाँ जा रहे हो ?

चोरी करने !

राजा आश्चर्य से देखने लगा, चोर होकर सच बोलता है कि चोरी करने जा रहा हूँ ! असंभव ! जरूर मजाक कर रहा है । या फिर कोई शराबी होगा ! राजा ने

भी मजाकिया मूड़ में पूछ लिया—अच्छा तो चोरी करने जा रहे हो ? आज कहां हाथ साफ करोगे ?

मणिशेखर ने निर्भीकता से जबाव दिया—राजमहल की तरफ जा रहा हूँ, वहीं आज अपना करिश्मा दिखाना है ।

राजा को लगा, सचमुच कोई नशेड़ी है, जाने दिया और आगे निकल गया । एक प्रहर बाद घूमते-घूमते राजा की मुलाकत फिर मणिशेखर से हो गई । राजा ने पूछा—कौन हो तुम ?

वही श्रेष्ठीपुत्र मणिशेखर !

अच्छा, चोरी करने गये थे ? कुछ बना काम ? कहां चोरी की है ?

राजा के खजाने में !

राजा खूब जोर से हंसा—अच्छा, क्या माल लाये हो ?

मणिशेखर ने बताया—खजाने में पाँच पेटियाँ रखी थीं, उनमें से दो पेटी का माल

मैंने साफ कर दिया । तीन पेटी ज्यूं की त्यूं छोड़ दीं !

कहां है, वह माल ?

वह पहुँच गया अपने ठिकाने !

राजा को अब पक्का भरोसा हो गया— आज किसी पक्के नशेड़ी से पाला पड़ा है, बार-बार वही मिल रहा है ! कितनी ऊंची डींग मार रहा है, जहां इतना जबर्दस्त पहरा बैठा है, परिन्दा भी पर नहीं मार सकता, वहीं यह नशेड़ी राज्य कोषगार में चोरी करेगा, माल भी मिल गया इसे । तीन पेटी छोड़ दीं, दो पेटी का माल बिहारी कर दिया..... कैसी गप्प....अहा हा....राजा आगे निकल गया । मणिशेखर भी अपने घर आकर सो गया । प्रातः राजा को खबर मिली, खजाने में से पाँच पेटियाँ चोरी हो गईं । राजा सुनते ही सकते में आ गया । उसे विश्वास हो गया, रातवाला चोर नशेड़ी नहीं, चोर ही था । मगर सच्चा चोर ! राजा ने गुणशेखर सेठ का पता लगवाया

और उसके पुत्र मणिशेखर को राजसभा में बुलाया। मणिशेखर राजसभा में उपस्थित हुआ। वेशभूषा, रंग-रूप, व्यवहार, बोल-चाल से बिल्कुल श्रेष्ठीपुत्र जैसा! लगता ही नहीं, यह चोरी कर सकता है! राजा ने पूछा—

रात को कहां घूम रहे थे ?

चोरी करने निकला था!

कहां चोरी की ?

राजा के खजाने में!

कितनी पेटी ?

दो पेटी का माल साफ किया, तीन पेटी ज्यूं की त्यूं छोड़ दीं।

राजा ने तीखी नजरों से पहरेदारों की तरफ देखा, वे सब थर-थर कांपने लग गये। गर्ज कर पूछा राजा ने—सच बोलो! कितनी पेटी चोरी हुई ? यह चोर खड़ा है सामने! इसने दो पेटी का माल चोरी किया है, बाकी तीन का माल कहां गया ? चोर कौन है ?

आखिर पहरेदारों ने कांपते हुए स्वीकार किया, हमने सोचा— चोर तीन पेटी छोड़ गया है, तो वह हम बांट लेवें और पाँच पेटी की चोरी बता दें....

राजा ने पहरेदारों को चोरी के अपराध में जेल भेज दिया और चोर मणिशेखर को सम्मानपूर्वक अपने पास आसन पर बिठाया, उससे कहा—मैं तुम्हारी सच्चाई और निर्भीकता से बहुत प्रसन्न हूँ । तुम मेरा मंत्री पद स्वीकार करो ।

सभी प्रजाजन चकित थे, चोर और मंत्री पद ! परन्तु राजा का दृढ़ विश्वास था । चोर सत्यवादी है, पाप करके भी पाप को स्वीकारता है तो कल पाप को छोड़ भी देगा और सदा निर्भीक, साहसी रहेगा ।

सत्यवादी आदतवश गलत काम कर भी लेता है तो भी वह धीरे-धीरे खुद को सुधार लेगा और एक दिन सबके लिए आदर्श बन जायेगा । जैसे सीलन, सडांध, कीटाणु आदि अंधेरे में पलते हैं, वैसे ही पाप आदि

बुराइयाँ झूठ की छाया तले पनपती है । धूप या हवा लगते ही जैसे बर्फ पिघल जाती है, वैसे ही सत्य का उजाला होते ही बुराइयाँ अपने आप गल जाती हैं ।

इसलिए मैं आज युवा शक्ति से कहना चाहता हूँ कि वे जीवन में सफल और यशस्वी बनना चाहते हैं तो जीवन में सत्यनिष्ठ बनें । देश, समाज और परिवार पर अपने विचारों का प्रभाव डालना चाहते हैं, अपने कृतित्व का प्रभुत्व जमाना चाहते हैं तो जीवन में सत्य आचरण सीखें । सच्चाई का दामन पकड़ें ! सत्यनिष्ठा ही उन्हें वीर, साहसी और प्रभावशाली बनायेगी ।

४. **सहनशील बनिए**—सहिष्णुता एक ऐसा गुण है जो मनुष्य को देवता बना देता है । कहावत है—सौ-सौ टाँचे खाकर महादेव बने हैं । पत्थर, हथौड़ी और छैनी की मार खा-खाकर ही देवता की मूर्ति बनती है । मनुष्य भी जीवन में कष्ट

सहकर सफल होता है । बिना आग में तपे सोना कुन्दन नहीं होता, मिट्टी का घड़ा भी आग में पकने पर ही उपयोगी होता है । उसी प्रकार मनुष्य भी विपत्तियों, असफलताओं और परिस्थितियों से संघर्ष करके, प्रतिकूलताओं से जूझकर, कष्टों को सहन करके अपने चरित्र को निखार सकता है ।

युवा वर्ग में आज सहनशीलता की बहुत कमी है । सहनशीलता के जीवन में दो रूप हो सकते हैं—पहला कष्टों में धैर्य रखना, विपत्तियों में भी स्वयं को सन्तुलित और स्थिर रखना तथा दूसरा रूप है—दूसरों के दुर्वचन सहन करना, किसी अनजाने या विरोधी ने किसी प्रकार का अपमान कर दिया, तिरस्कार कर दिया तब भी अपना आपा न खोना । स्वयं को सँभाले रखना और उसके अपमान का उत्तर अपमान से नहीं, किन्तु कर्तव्यपालन से और सहिष्णुता से देवें ।

युवक एक कर्मठ शक्ति का नाम है जो काम करता है उसे समाज में भला-बुरा भी सुनना पड़ता है । शारीरिक कष्ट भी सहने पड़ते हैं और लोगों की आलोचना भी सुननी पड़ती है क्योंकि लोग आलोचना भी उसी की करते हैं जो कुछ करता है । जो निठल्ला बैठा है, कुछ करता ही नहीं उसकी आलोचना भी क्या होगी, अतः कार्यकर्ताओं की समाज में आलोचनाएँ भी होती हैं ।

युवक क्रान्ति की उद्घोषणा करता है, परिवर्तन का बिगुल बजाता है, समाज व राष्ट्र की जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं को सुधारना, अन्धविश्वास की जगह स्वस्थ उपयोगी कार्यक्रम देना चाहता है और समाज में जागृति लाना चाहता है, इन सुन्दर स्वप्नों को पूरा करने के लिए उसे समाज के साथ संघर्ष भी करना पड़ता है, परन्तु ध्यान रहे, इस संघर्ष में कटुता न आवे, व्यक्तिगत मान-अपमान की क्षुद्र

भावनाएँ न जगें, किन्तु उदार व उदात्त दृष्टि रहे । आपका संघर्ष किसी व्यक्ति के साथ नहीं, विचारों के साथ है । भाई-भाई, पति-पत्नी, पिता-पुत्र दिन में भले ही अलग-अलग विचारों के खेमे में बैठे हों, किन्तु सायं जब घर पर मिलते हैं तो उनकी वैचारिक दूरियाँ बाहर रह जाती हैं और घर पर उसी प्रेम, स्नेह और सौहार्द की गंगा बहाते रहें—यह है वैचारिक उदारता और सहिष्णुता । जैनदर्शन यही सिखाता है कि मतभेद भले हो, मनभेद न हो । "मतभेद भलें हो मन भर, मनभेद नहीं हो कण भर ।" विचारों में भिन्नता हो सकती है, किन्तु मनों में विषमता न आने दो । विचारभेद को विचार सामंजस्य से सुलझाओ, और वैचारिक समन्वय करना सीखो ।

युवा पीढ़ी में आज वैचारिक सहिष्णुता की अधिक कमी है और इसी कारण संघर्ष, विवाद एवं विग्रह की

चिनगारियाँ उछल रही हैं, और युवाशक्ति निर्माण की जगह विध्वंस के रास्ते पर जा रही है ।

मैं युवकों से आग्रह करता हूँ कि वे स्वयं के व्यक्तित्व को गम्भीर बनायें, क्षुद्र विचार व छिछली प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर यौवन को समाज व राष्ट्र का श्रृंगार बनायें।

धन को नहीं, त्याग को महत्व दो

आज का युवा वर्ग लालसा और आकांक्षाओं से बुरी तरह ग्रस्त हो रहा है । मैं मानता हूँ भौतिक सुखों का आकर्षण ऐसा ही विचित्र है, इस आकर्षण की डोर से बंधा मनुष्य कठपुतली की तरह नाचता रहता है । आज का मानव धन को ही ईश्वर मान बैठा है—'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते' सभी गुण, सभी सुख धन के अधीन हैं, इस धारणा के कारण मनुष्य धन के पीछे पागल है और धन के लिए चाहे जैसा अन्याय, भ्रष्टाचार, अनीति, हिंसा, तोड़फोड़, हत्या, विश्वास-घात कर सकता है । संसार में कोई पाप

ऐसा नहीं जो धन का लोभी नहीं करता हो ।

आज के जीवन में मनुष्य की आवश्यकताएँ, इच्छाएँ, अपेक्षायें इतनी ज्यादा बढ़ गई हैं कि उनकी पूर्ति के लिए धन की जरूरत पड़ती है, इसलिए मनुष्य धन के लोभ में सब कुछ करने को तैयार हो जाता है । कुछ युवक ऐसे भी हैं, जिनमें एक तरफ धन की लालसा है, भौतिक सुख-सुविधाओं की इच्छा है तो दूसरी तरफ कुछ नीति, धर्म और ईश्वरीय विश्वास भी है । उनके मन में कभी-कभी द्वन्द्व छिड़ जाता है, नीति-अनीति का, न्याय-अन्याय का, धर्म-अधर्म का प्रशन उनके मन को मथता है, किन्तु आखिर में नीतिनिष्ठा, धर्मभावना दुर्बल हो जाती है । लालसायें जीत जाती हैं । वे अनीति व भ्रष्टाचार के शिकार होकर अपने आप से विद्रोह कर बैठते हैं ।

युवावर्ग आज इन दोनों प्रकार की मनःस्थिति में है । पहला—जिसे धर्म व नीति का कोई विचार ही नहीं है वह उद्दाम लालसाओं के वश हुआ बड़े से बड़ा पाप करके भी अपने पाप पर पछताता नहीं ।

दूसरा वर्ग—पाप करते समय संकोच करता है, कुछ सोचता भी है, किन्तु परिस्थितियों की मजबूरी कहें या उसकी मानसिक कमजोरी कहें—वह अनीति का शिकार हो जाता है ।

एक तीसरा वर्ग ऐसा भी है—जिसे हम आटे में नमक के बराबर भी मान सकते हैं जो हर कीमत पर अपनी राष्ट्रभक्ति, देशप्रेम, धर्म एवं नैतिकता की रक्षा करना चाहता है और उसके लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी भी करने को तैयार रहता है । ऐसे युवक बहुत ही कम मिलते हैं; परन्तु अभाव नहीं है ।

मैं आप युवा वर्ग से कहना चाहता हूँ, शायद आप पहली या तीसरी कोटि में नहीं है । आप में से अधिकांश दूसरी स्थिति में हैं, जिनके मन में धर्म और नीति के प्रति एक निष्ठा है, एक सद्‌भावना है, किन्तु भौतिक प्रलोभनों का धक्का उस निष्ठा की कमजोर दीवार को गिरा सकता है अतः आपको मेरा यही संदेश है कि आप स्वयं को समझें, अपने महान लक्ष्य को सामने रखें । महान लक्ष्य के लिए स्वयं बलिदान करने वाला मरकर भी अमर रहता है ।

एक उर्दू शायर ने कहा है—

जी उठा मरने से,
जिसकी खुदा पर थी नजर,
जिसने दुनियां ही को पाया,
था वह सब खोके मरा ।

जो जीना हो तो पहले
जिन्दगी का मुद्दआ समझे
खुदा तोफीक दे तो
आदमी खुद को खुदा समझे ।

धन, सुख-सुविधायें, ऊंचा पद, ऐशो-आराम यह मनुष्य-जीवन का लक्ष्य नहीं है, ये तो एकमात्र जीने के साधन हैं । साधन को साध्य समझ लेना भूल है । संसार में लाखों, करोड़ों लोगों को अपार सम्पत्ति और सुख साधन प्राप्त हैं, फिर भी वे बेचैन हैं और रूखी-सूखी खाकर भी मस्ती मारने वाले लोग दुनिया में बहुत हैं ।

युवकों का दृष्टिकोण—आज धनपरक हो रहा है या सुखवादी होता जा रहा है । धन को ही सब कुछ मान बैठे हैं । उन्हें धन की जगह त्याग और सेवा की भावना जगानी होगी । संसार धन से नहीं, त्याग से चलता है, प्रेम से चलता है । एक माता पुत्र का पालन-पोषण किसी धन या उपकार की भावना से नहीं करती, वह तो प्रेम और स्नेह के कारण ही करती है । क्या कोई नर्स जिसको आप चाहें सौ रूपया रोज देकर

रखें, माँ जैसी सेवा परिचर्या कर सकती है ? धन कभी भी मनुष्य को, मनुष्य का मित्र नहीं बनने देता । धन के कारण तो मनुष्य मनुष्य का शत्रु बन जाता है । मित्रता, प्रेम, त्याग और सेवा से ही मिलती है, प्रशंसा और कीर्ति धन से नहीं, कर्तव्य-पालन से मिलती है । मानसिक प्रसन्नता और आत्म-सन्तोष धन से कभी किसी को मिला है? नहीं ! इसलिए युवा वर्ग को अपना दृष्टिकोण बदलना होगा । इन आंखों में लक्ष्मी के सपने नहीं किन्तु कर्तव्य-पालन और सेवा एवं सहयोग के संकल्प सँजोओ !

अधिकार बनाम कर्तव्य

आज चारों तर्फ अधिकारों की लड़ाई चल रही है । परिवार में पुत्र कहता है—मेरा यह अधिकार है, पुत्री कहती है—मेरा यह अधिकार है । पत्नी माता-पिता, सभी

अपने-अपने अधिकार की लड़ाई में कर्तव्य एवं प्रेम का खून बहा रहे हैं । इसी प्रकार समाज में वर्ग संघर्ष बढ़ रहा है । नौकर अपने अधिकार की माँग करता है, तो मालिक अपने अधिकार की माँग करता है । अधिकार की भावना ने ही वर्ग संघर्ष को जन्म दिया है, परिवारों को तोड़ा है, घर को उजाड़ा है, और समाज—संस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया है । अधिकार की लड़ाई में आज कर्तव्य-पालन को कोई नहीं पूछता । पुत्र का अधिकार है, पिता की सम्पत्ति में, परन्तु कोई उससे पूछे, उसका कर्तव्य क्या है ? माता-पिता की सेवा करना, उनका दुःख-दर्द बांटना, क्या पुत्र का अधिकार नहीं है । अधिकार की माँग करने वाला अपने कर्तव्य को क्यों नहीं समझता ? यदि युवक, अपने कर्तव्य को समझ ले, तो अधिकारों का संघर्ष खत्म हो जायेगा, स्वयं

ही उसे अधिकार प्राप्त हो जायेंगे ।

एक सूक्ति है—'भाग की चिन्ता मत करो, भाग्य पर भरोसा रखो । भगवान् सब कुछ देगा ।'

मुझे एक कहानी याद आती है—एक बड़े धनाढ्य व्यक्ति ने एक नौकर रखा, उसको कहा गया, तुम्हें यह सब काम करने पड़ेंगे, जो हम चाहते हैं । नौकर ने कहा—मुझे आप लिस्ट बनाकर दे दीजिए, जो-जो काम करना है, वह पूरी वफादारी से करूँगा। उस व्यक्ति ने एक लम्बी लिस्ट (सूची) टाइप करवाकर सर्वेन्ट को दे दी । सुबह से शाम तक, यह तुम्हारी ड्यूटी है । उसने देखा—सुबह, सबसे पहले बॉस टहलने के लिए 'मोरनिंग-वाक' के लिए जाते हैं, तब उनके साथ-साथ जाना है ।

एक दिन मालिक नहर के किनारे-किनारे टहल रहा था, टहलते हुए उसका

एक पाँव फिसल गया और छपाक से नहर में डुबकियाँ लगाने लगा, चिल्लाया— 'बचाओ'! 'निकालो' ! पीछे-पीछे आता नौकर रुका, बोला— ठहरो—अभी देखता हूँ, अपनी ड्यूटी की लिस्ट में, मालिक के नहर में गिरने पर, निकालने की ड्यूटी लिखी है, या नहीं ?

तो इस प्रकार की भावना, मालिक और नौकर के बीच हो, परिवार और समाज में हो, तो वहां कौन, किसका सुख-दुख बांटेगा ? कोई किसी के काम नहीं आयेगा ? अतः आवश्यक है, आप जीवन में कर्तव्य-पालन की भावना जगाएँ । अधिकार के लिए कुत्तों की तरह छीना-झपटी न करें । संसार में जितने भी व्यक्ति सफलता के शिखर पर पहुँचे हैं, उनमें कर्तव्य-पालन की भावना अवश्य रही है । युवक जीवन में इन मुख्य गुणों के

साथ-साथ कुछ ऐसे गुण भी आवश्यक हैं, जिन्हें हम जीवन-महल की नींव कह सकते हैं, या जीवन पुस्तक की भूमिका कहा जा सकता है । वे सुनने में बहुत ही सामान्य गुण हैं, किन्तु आचरण में असामान्य लाभ देते हैं । सच्चाई, ईमानदारी, सदाचार, विनम्रता और सदा प्रसन्नमुखता—ये गुण ऐसे साधारण लगते हैं, जैसे जीने के लिए पानी या हवा बहुत साधारण तत्व प्रतीत होते हैं, किन्तु जैसे पानी व पवन के बिना जीवन संभव नहीं है, उसी प्रकार इन गुणों के बिना जीवन में सफलता और सुख कभी संभव नहीं है ।

आज का युवा वर्ग अपने आप को पहचाने, अपनी शक्तियों को पहचाने, और उन शक्तियों को जगाने के लिए प्रयत्नशील बने, जीवन को सुसंस्कारित करने के लिए दृढ़-संकल्प ले, तो कोई कारण नहीं कि युवा

शक्ति का यह उद्घोष—इस धरती पे लायेंगे स्वर्ग उतार के..............सफल नहीं हो । अवश्य सफल हो सकता है । आज के युग में शिक्षा प्रसार काफी हुआ है, मगर संस्कार-प्रसार नहीं हो पाया है, अतः जरूरत है, युवाशक्ति को संस्कारित, संगठित और अनुशासित होने की । ....जीवन निर्माण करके राष्ट्र-निर्माण में जुटने की..........

● ●

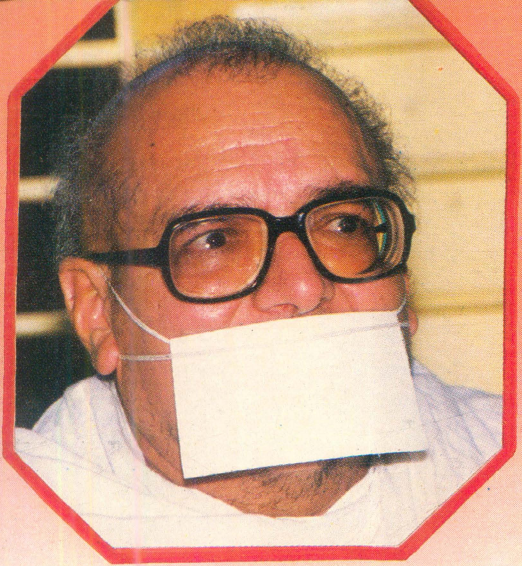

उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

जैन तत्वविद्या के प्रज्ञापुरुष सिद्धहस्त लेखक

जन्म : वि. सं. १९८८, धनतेरस, ७ नवम्बर, १९३१

दीक्षा : ईस्वी सन् १ मार्च १९४१

उपाचार्य पद : १२ मई, १९८७, पूना श्रमण सम्मेलन पर

'युवक' वह नहीं जो २०-२५ वर्ष का जवान है, युवक वह है, जिसमें उत्साह है, स्फूर्ति है, चेतना है, संघर्ष करने की क्षमता है और सफलता के शिखर पर पहुँचे बिना लौटने का नाम नहीं लेता ।

चरित्र-बल, अनुशासन, और लोक कल्याण की भावना से काम करना युवक का जीवन मंत्र है ।

युवक में उत्साह के साथ विवेक और श्रद्धा भी हो तो उसकी गति हमेशा लक्ष्य की ओर बढ़ती रहेगी ।

युवक, पहले स्वयं का निर्माण करता है फिर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का ।

—उपाचार्य देवेन्द्र मुनि

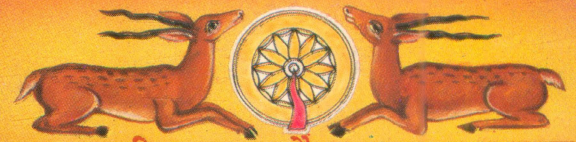

प्रकाशक : श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर